जब जागो तब सवेरा

हमारे समाज में नारी की पिछड़ी हुई स्थिति का मुख्य कारण उसका पुरुष पर निर्भर होना है। दूसरे, लड़कियों में शुरू से ही पिता, भाई का भय बैठा दिया जाता है जो जीवन के अन्त तक बना रहता है। जीवनभर वह पिता, भाई, पति, पुत्र के क़ानूनों में ख़ुद को बांधे रखती है। ऐसे संस्कार उसमें भर दिए जाते हैं कि अन्याय के विरोध की शक्ति उसमें आ ही नहीं पाती। तमाम दुख, पीड़ा, कष्ट सहकर देवी बनने की कोशिश में वह एक आज़ाद जीवन कभी जी ही नहीं पाती। आख़िर ऐसा क्यों है?

सच्चाई क्या है?

औसतन लोगों का यही मानना है कि स्त्री के दुखों का कारण स्वयं स्त्री वर्ग होता है। मां अपनी बेटी को आदर्शों और मर्यादाओं की दुहाई देती है। वह कभी उसके पढ़ने-लिखने आज़ाद जीवन की तरफ ध्यान देना पसन्द नहीं करती। लड़की पढ़ रही है तो ठीक है, नहीं तो भी ठीक है। 'कौन सा पढ़-लिखकर कलक्टरी करनी है।' आज भी यही मानसिकता समाज में फैली है। दूसरे उसे शुरू से ही 'सास के जाएगी तो क्या करेगी' का डर दिखाया जाता है। नतीजन लड़की के दिमाग में सास और ससुराल की 'कुरुक्षेत्र' वाली छवि बन जाती है। जहां उसे अपने जीवन का महाभारत लड़ना होता है। हर बहू सास में दोष ढूंढती है और हर सास बहू से अपना हिसाब चुकता करती नज़र आती है। तो औरतों के ये आपसी झगड़े उनके विकास में सबसे बड़ी बाधा हैं। ज़रूरत इस बात की है कि आप काम-धंधे में मन लगाएं, कुछ पैसा कमाएँ ताकि परिवार और बच्चों का भविष्य बेहतर बने और इसके लिए ज़रूरी है पढ़ना-लिखना। तभी आप किसी भी काम को बेहतर ढंग से समझते हुए करके, अपनी मेहनत का सही फल पा सकेंगी।

सबसे पहले तो यह समझ लेना होगा कि पुरुष स्त्री का भाग्यविधाता नहीं है। न ही वह उसका देवता है। जीवन और गृहस्थी के पालन में

वह उसके साथी से अलग कुछ नहीं है। वह भी उसी मिट्टी का बना है जिससे स्त्रियां। उसमें भी वही कमजोरियां हो सकती हैं जो एक इंसान में होती हैं। पुरुष पैसा कमाकर लाता है सिर्फ इसलिए वह महान है यह गलत है। पुरुष के कमाने से अधिक मेहनत है पूरे परिवार को अच्छी तरह चलाने में। इसके लिए औरतों को अबला, असहाय बनकर रहने की मानसिकता से मुक्त होना होगा।

दूसरी बात बेकार की बातों में समय बिताना फ़िज़ूल है। घर के कामकाज से मुक्ति पाकर पड़ोसिनों की पंचायत जुटाने से अच्छा है कुछ नया करें। दुनिया भले ही चांद पर पहुंच जाए पर आप घूंघट से बाहर न निकलें। अपने व्रत उपवासों से मुक्त न हों, धर्म के घन्टे बजाने से फ़ुर्सत न लें—तो दोष किसका? ज़रूरत है अपनी शक्ति को अपने लिए ख़र्च करने की। कुछ नया करना होगा—ऐसा जो आत्मनिर्भर बना सके।

अन्याय सहना गुनाह

एक बात समझ लेनी होगी। अन्याय करने वाले से सहने वाला ज़्यादा बड़ा गुनहगार होता है। जब तक आप सहेंगी लोग आपका फ़ायदा उठाएंगे। अपने अधिकार के लिए लड़ना सीखिए। समाज से अपना हक मांगिए। क्यों पुरूषों को जन्म देने वाली औरत उसकी दासी की तरह जीने पर मजबूर हो? क्यों वह अपने को कमजोर मानकर दुबकी रहे? बेटी है तो उसे भी आज़ादी से जीने का हक़ है। बहू है तो किसी की दासी नहीं है—उस परिवार का सदस्य है। क्यों वह हर किसी के हुक्म के सामने झुकी रहे?

कामकाजी महिलाओं के सामने भी यही समस्या है। घर की ज़िम्मेदारी भी निभाओ, बाहर की भी। तब भी किसी अधिकार का नाम नहीं क्यों? सिर्फ़ इसलिए कि शान्ति, सुख की तलाश में स्त्रियां झुकती चली जाती हैं। औरत का मौन और उसका समर्पण ही उसकी दुर्दशा का कारण बन जाता है।

इस तमाम स्थिति से उबरने के लिए महिलाओं को अपने आप से ही पूछना होगा कि वह समाज का एक अंग है या बेगार मज़दूर। बेकार की रूढ़ियों, परम्पराओं, बंधनों के नाम पर वह क्यों पिसती रहें। अपने सम्मान और अधिकार के ख़िलाफ़ तनी मुट्ठियों का जवाब वह क्यों न दे।

स्वयं पुरुषों को अपनी मर्दानगी का अहंकार छोड़ना होगा। उसे एक सहयोगशील साथी की भूमिका निभानी होगी। ख़ासकर इस मंहगाई के दौर में जब दोनों का कमाना लाजमी हो जाता है। तब उसे पारिवारिक दायित्वों के पालन में समान भागीदारी रखनी होगी।

यह समझ लेना चाहिए कि 'स्त्री पुरुष की दासी' के जमाने लद गए। ख़ुद महिलाओं को बेटी, बहू, सास, मां के खेमों से निकलकर एकजुट होना होगा। उन्हें मर्दों के इस समाज, मर्दों की राजनीति, मर्दों के धर्म में अपनी पहचान बुलंद करनी ही होगी। □

सुनीता ठाकुर